संपादकीय

सोना सस्ता होने से गोल्ड लोन लेने वालों पर मुसीबत का पहाड़

पिछले 27 दिन में सोने की कीमतों में करीब 13.58 फीसदी की गिरावट आई है। गिरवी रखे सोने और गहनों पर अतिरिक्त रकम जमा करने का दबाव बनाया जा रहा है। भुगतान नहीं करने पर नीलामी का खतरा बढ़ गया है। भारत में सोना केवल आभूषण या निवेश का माध्यम नहीं है, करोड़ों परिवारों के लिए आर्थिक सुरक्षा का सबसे बड़ा सहारा है। जब परिवार पर अचानक आर्थिक संकट आता है, बच्चों की पढ़ाई की फीस भरनी होती है, इलाज कराना होता है, या पुराने कर्ज की किस्त चुकानी होती है, तब घर में रखा सोना काम आता है। लोग अपनी जरूरत के लिए सोने को गिरवी रखकर जरूरत पूरी करते हैं। अब यही आर्थिक सहारा कई परिवारों के लिए नई परेशानी का कारण बनता जा रहा है। पिछले 26 दिनों में सोने की कीमतों में लगभग 13.58 फीसदी की गिरावट, दूसरी तरफ गोल्ड लोन बढ़कर 8.15 लाख करोड़ रुपये तक पहुंचने का आंकड़ा वित्तीय व्यवस्था के सामने कई गंभीर सवाल खड़े करता है। सोने की कीमत घटने से बैंकों और गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों (एनबीएफसी) के लिए गिरवी रखे सोने का मूल्य कम हुआ है। ऐसे में कर्ज देने वाली संस्थाएं ग्राहकों से अतिरिक्त सोना या बकाया राशि जमा करने की मांग कर रही हैं। जिन परिवारों ने अपनी सोने के रूप में रखी पूरी बचत गिरवी रखकर कर्ज लिया है, उनके लिए यह स्थिति बेहद कठिन हो गई है। इस पूरे मामले का सबसे चिंताजनक पहलू यह है, गोल्ड लोन का विस्तार केवल निवेश या कारोबार की जरूरतों से नहीं हो रहा है। बड़ी संख्या में परिवार अपनी रोजमर्रा की आर्थिक जरूरतें पूरी करने के लिए सोना गिरवी रख रहे हैं। कई लोग पुराने कर्ज की किस्त चुकाने के लिए नया गोल्ड लोन ले रहे हैं। इसके अलावा अस्पतालों का खर्च, बच्चों की शिक्षा, घरेलू जरूरतें और शादी-विवाह जैसे सामाजिक दायित्व भी इसकी बड़ी वजह हैं। इसका अर्थ यह है, भारतीय परिवारों की आर्थिक स्थिति कमजोर हो रही है। वे अपनी संपत्ति को गिरवी रखकर वर्तमान जरूरतें पूरी कर रहे हैं।सीआरआईएफ की नवंबर 2026 में जारी रिपोर्ट के अनुसार, सितंबर 2026 तक देश में गोल्ड लोन का बकाया पोर्टफोलियो 23.3 लाख करोड़ रुपये पहुंच गया, जो सालाना आधार पर 60.6 फीसदी अधिक है। सक्रिय गोल्ड लोन खातों की संख्या 10.2 करोड़ हो गई है। जुलाई-सितंबर तिमाही में नए गोल्ड लोन का मूल्य 8.15 लाख करोड़ रुपये रहा, जिसमें 27.2 फीसदी की वृद्धि हुई है। खास बात यह है कि इस दौरान लोन खातों की संख्या 4.1 फीसदी घटी है। इसके बावजूद भी औसत लोन की राशि 32.7 फीसदी बढ़कर 2.2 लाख रुपये हो गई। यानी कम खातों के बावजूद लोग पहले की तुलना में बड़ी रकम उधार ले रहे हैं। गोल्ड लोन का विस्तार अब बड़े महानगरों तक सीमित नहीं रहा। सीआरआईएफ के आंकड़ों के अनुसार, छोटे शहरों और कस्बों में भी गोल्ड लोन की मांग तेजी से बढ़ रही है। महिलाओं के गोल्ड लोन खातों की संख्या बढ़कर 2.4 करोड़ पहुंच गई है। कुल गोल्ड लोन पोर्टफोलियो में महिलाओं की हिस्सेदारी 42.2 फीसदी पर पहुंच गई है। यह आंकड़ा बताता है, परिवारों की आर्थिक जरूरतों को पूरा करने में महिलाओं के गहने भी बड़ी मात्रा में इस्तेमाल हो रहे हैं। दक्षिण भारत के पांच राज्यों की हिस्सेदारी कुल बकाया गोल्ड लोन में लगभग 72 फीसदी है। दूसरे राज्यों में भी गोल्ड लोन लेने वालों की संख्या लगातार बढ़ रही है। सोने की कीमतों में गिरावट का सीधा असर गिरवी रखे सोने के बदले दिए गए कर्ज पर पड़ रहा है। उदाहरण के लिए, यदि किसी व्यक्ति ने सोने की ऊंची कीमत के समय 1.50 लाख रुपये का लोन लिया था. अब गिरावट के कारण गिरवी रखे सोने का मूल्य कम हो गया है। इससे कर्जदाता के लिए जोखिम बढ़ जाता है। लोन और गिरवी रखे सोने के वर्तमान मूल्य के बीच का अनुपात बढ़ने से ग्राहक को अतिरिक्त भुगतान या अतिरिक्त सोना जमा करने के नोटिस शुरू हो गए हैं। हर बैंक या एनबीएफसी तत्काल अतिरिक्त भुगतान की मांग नहीं कर सकती है। यह लोन की शर्तों, निर्धारित लोन-टू-वैल्यू अनुपात और संबंधित नियमों पर निर्भर करता है। भुगतान नहीं होने पर निर्धारित प्रक्रिया के तहत कार्यवाही के पश्चात गिरवी रखे सोने की नीलामी हो सकती है। हालिया बाजार रिपोर्टों में गोल्ड लोन कंपनियों पर बढ़ते दबाव और नीलामी के अंदेशे का में उल्लेख किया गया है। गोल्ड लोन में लगातार बढ़ोतरी के साथ सबसे बड़ा खतरा यह है, जिन परिवारों की बचत धीरे-धीरे कर्ज के बोझ में बदल रही है।

भारतीय संसद का चार दिवसीय विशेष सत्र बना सियासी महासंग्राम!

लोकतंत्र का सबसे बड़ा राजनीतिक पुनर्गठन या 2029 के चुनाव का मास्टरस्ट्रोक? संविधान का अनुच्छेद 368,106वां और प्रस्तावित 131वां संविधान संशोधन,1971 व 2011 बनाम 2027 जनगणना और 543 से 850 लोकसभा सीटों का गणित।दक्षिण भारत की हिस्सेदारी पर सवाल?महिला आरक्षण का मुद्दा और विपक्ष की चुनौती! संसद के विशेष सत्र पर पूरी दुनियाँ की नज़र! - समग्र व्यापक महा-विश्लेषण!

भारत की संसद में ऐतिहासिक राजनीतिक महासंग्राम! संभावित 850 सीटों का प्रस्ताव? महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण, उत्तर-दक्षिण प्रतिनिधित्व की जंग और 2029 का चुनावी समीकरण! एनडीए को चाहिए अतिरिक्त समर्थन, विपक्ष के पास भी है सत्ता का गणित बदलने का हथियार!

क्या 2029 के लोकसभा चुनाव से पहले बदल जाएगा भारत का सत्ता-समीकरण? 543 से 850 सीटें? 33 प्रतिशत महिला आरक्षण, परिसीमन का विवाद और एनडीए के 320 सांसदों की दो-तिहाई बहुमत की परीक्षा! विपक्ष की रणनीति से पलट सकता है पूरा खेल!

वैश्विक स्तरपर वर्तमान वैश्विक प्रौद्योगिकी, डिजिटल क्रांति,कृत्रिम बुद्धिमत्ता और आंकड़ा आधारित नीति निर्धारण के दौर में दुनियाँ के लोकतांत्रिक देश अपनी संसदों में कानून बनाते समय नवीनतम जनसंख्या आर्थिक स्थिति, सामाजिक परिस्थितियों और भविष्य की आवश्यकताओं को आधार बना रहे हैं। अमेरिका की सीनेट और प्रतिनिधि सभा से लेकर ब्रिटेन तथा यूरोप की संसदीय व्यवस्थाओं तक बदलती परिस्थितियों के अनुरूप नीतिगत निर्णय लेने की परंपरा दिखाई देती है। इसी वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारत की संसद का आगामी विशेष सत्र अत्यंत महत्वपूर्ण राजनीतिक संवैधानिक और लोकतांत्रिक घटनाक्रम बन गया है।केंद्र सरकार ने लोकसभा को सोमवार 30 नवंबर 2026 और राज्यसभा को बुधवार 2 दिसंबर 2026 से पुन:बैठाने का निर्णय लिया है।दोनों सदनों की बैठकें क्रमशः 30 नवंबर और 1 दिसंबर तथा 2 और 3 दिसंबर तक चल सकती हैं।संसदीय कार्यमंत्री ने 26 नवंबर को आवश्यक सरकारी कामकाज का हवाला दिया था,जबकि 27 नवंबर को उन्होंने यह भी कहा कि इस सत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण विधेयक और राष्ट्रीय महत्व के विषय सामने आ सकते हैं। मैं एडवोकेट किशन सनमुखदास भावनानीं गोंदिया महाराष्ट्र बताना चाहूंगा कि हालांकि शुक्रवार दिनांक 27 नवंबर 2026 तक शाम 6 बजे तक सरकार ने विधायी कार्यसूची में परिसीमन विधेयक और महिला आरक्षण संबंधी प्रस्तावों को औपचारिक रूप से घोषित नहीं किया है। इसके बावजूद राजनीतिक चर्चाओं के केंद्र में यही दोनों विषय हैं।

साथियों बात अगर हम पहला महत्वपूर्ण पहलू,विशेष सत्र या मानसून सत्र का विस्तार? को समझने की करें तो इस घटनाक्रम की एक संवैधानिक और संसदीय बारीकी समझना जरूरी है।संसद का मानसून सत्र 13 अगस्त 2026 को अनिश्चितकाल के लिए स्थगित हुआ था, लेकिन उसे औपचारिक रूप से सत्रावसान नहीं किया गया था। इसलिए आगामी बैठकें उसी सत्र के दूसरे भाग के रूप में आयोजित होने की बात सामने आई है। इसीलिए इसे राजनीतिक और समाचार विमर्श में विशेष बैठक कहा जा रहा है, लेकिन तकनीकी रूप से इसे पूरी तरह अलग नया सत्र मानना सही नहीं होगा। सरकार ने सामान्य शीतकालीन सत्र की बजाय यह संक्षिप्त कार्यक्रम क्यों चुना,इसपर विपक्ष सवाल उठा रहाहै।वहीं सत्ता पक्ष आवश्यक सरकारी कामकाज को इसका कारण बता रहा है। सदन की अधिसूचित कार्यसूची और कार्यवाही का कार्यक्रम सटीकता से निर्णायक होगा।

साथियों बात अगर हम दूसरा पहलू,543 से 850 सीटों तक लोकसभा का विस्तार!को समझने की करें तो प्रस्तावित संविधान संशोधन का सबसे बड़ा आकर्षण लोकसभा की अधिकतम सदस्य संख्या 550 से बढ़ाकर 850 तक करने की संभावना है।वर्तमान लोकसभा में 543 निर्वाचित सीटें हैं।प्रस्तावित व्यवस्था में सीटों का विस्तार करके राज्यों के प्रतिनिधित्व का पुनर्गठन करने की चर्चा है।तर्क है कि 1952 में जब भारत का पहला आम चुनाव हुआ था,तब मतदाताओं की संख्या लगभग 17 करोड़ थी और लोकसभा में 489 सदस्य थे।आज मतदाताओं की संख्या लगभग 98 करोड़ पहुंच चुकी है,लेकिन निर्वाचित लोकसभा सीटें 543 ही हैं।ऐसे में बढ़ती आबादी और लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व आवश्यकताओं को देखते हुए सीटें बढ़ाना समय की मांग बताया जा रहा है।हालांकि 850 सीटों का आंकड़ा प्रस्तावित अधिकतम सीमा है, कोई अंतिम स्वीकृत सीट आवंटन नहीं। प्रत्येक राज्य को कितनी सीटें मिलेंगी, यह विधायी प्रावधानों और परिसीमन प्रक्रिया पर निर्भर करेगा।

साथियों बात अगर हम तीसरा पहलू,1971 की जनगणना बनाम 2027 की जनगणना का सवाल! को समझने की करें तो परिसीमन विधेयक के तहत राज्यों के बीच सीटों के अनुपात को 1971 की जनगणना पर स्थिर रखने(25 वर्षों के लिए और बढ़ाने) और राज्यों के भीतर सीटों के पुनर्गठन के लिए 2011 की जनगणना का उपयोग करने का प्रस्ताव है।इसनिर्णय और 1971 बनाम 2027 की जनगणना के पीछे के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं (अ)1971 की जनगणना को आधार बनाने के प्रमुख कारण,दक्षिणी राज्यों की चिंताओं का समाधान (संघीय संतुलन):मीडिया रिपोर्टों के अनुसार आंध्र प्रदेश, तेलंगाना तमिलनाडु,केरल और कर्नाटक जैसे दक्षिणी राज्यों ने जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक लागू किया है।यदि नई जनसंख्या के आधार पर राज्यों को सीटें बांटी जातीं, तो उत्तर भारत के तेजी से बढ़ती आबादी वाले राज्यों की सीटें बढ़ जातीं और दक्षिणी राज्यों का राजनीतिक प्रतिनिधित्व कम हो जाता। 50 प्रतिशत समान वृद्धि का फॉर्मूला: इस असंतुलन को रोकने के लिए केंद्र सरकार ने सभी राज्यों की सीटों में एकसमान 50प्रतिशत वृद्धि करने और 1971 की जनगणना के अनुपात को अगले 25 वर्षों (2051 तक) के लिए फ्रीज (स्थिर) रखने का फॉर्मूला तैयार किया है। इससे लोकसभा की अधिकतम सीटें 550 से बढ़कर 850 (815 राज्यों से और 35 केंद्र शासित प्रदेशों से) करने का रास्ता साफ होगा और किसी भी राज्य की हिस्सेदारी कम नहीं होगी।अप्रैल 2026 की विफलता से सबक:अप्रैल 2026 में जब सरकार ने बिना इस संवैधानिक गारंटी के परिसीमन विधेयक पेश किया था तब विपक्ष के विरोध के कारण यह लोकसभा में आवश्यक दो-तिहाई बहुमत (298 पक्ष में, 230 विरोध में) हासिल नहीं कर सका था।(ब)2027 की जनगणना का इंतजार क्यों नहीं किया जा रहा? 2029 के चुनाव में महिला आरक्षण लागू करना: 2023 में पारित नारी शक्ति वंदन अधिनियम (106वां संविधान संशोधन) के तहत लोकसभा और विधान सभाओं में महिलाओं को 33% आरक्षण देने के लिए जनगणना और परिसीमन की शर्त रखी गई थी।समय की बाध्यता: आगामी जनगणना की संदर्भ तिथि 1 मार्च 2027 तय है। यदि इस जनगणना के पूरे होने और उसके आंकड़े प्रकाशित होने के बाद परिसीमन की प्रक्रिया शुरू की जाती,तो 2029 के आम चुनावों तक महिला आरक्षण लागू करना व्यावहारिक रूप से संभव नहीं हो पाता।2011 की जनगणना का उपयोग: समय बचाने और 2029 तक महिला आरक्षण लागू करने के उद्देश्य से, प्रस्तावित संशोधन के तहत 2027 की जनगणना का इंतजार किए बिना पहले से प्रकाशित 2011 की जनगणना के आधार पर राज्यों के भीतर निर्वाचन क्षेत्रों की सीमाओं का पुनर्निर्धारण किया जाएगा।

साथियों बात अगर हम चौथा पहलू,महिला आरक्षण और 2029 का राजनीतिक लक्ष्य! को समझने की करें तो, सितंबर 2023 में संसद ने 106वां संविधान संशोधन अधिनियम अर्थात नारी शक्ति वंदन अधिनियम पारित किया था। इसके अंतर्गत लोकसभा और राज्य विधान सभाओं में महिलाओं के लिए एक-तिहाई यानी 33 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया है। लेकिन इसके क्रियान्वयन को संबंधित जनगणना और उसके बाद होने वाली परिसीमन प्रक्रिया से जोड़ा गया है। सरकार की मंशा इस व्यवस्था को 2029 के लोकसभा चुनाव से पहले लागू करने की बताई जा रही है। अप्रैल 2026 में इसी उद्देश्य से संविधान (131वां संशोधन) विधेयक, 2026 तथा संबंधित विधायी प्रस्ताव सामने आए थे। सरकार का तर्क था कि महिलाओं को राजनीतिक प्रतिनिधित्व देने में अनावश्यक विलंब नहीं होना चाहिए। दूसरी ओर विपक्ष का कहना है कि महिला आरक्षण के नाम पर परिसीमन और लोकसभा की सीटों के पुनर्गठन को एक साथ जोड़ना आवश्यक नहीं है। महिलाओं को मौजूदा सीटों में भी सटीकता से आरक्षण दिया जा सकता है।

साथियों बात अगर हम पांचवां पहलू,एनडीए के 320 सांसद और दो-तिहाई बहुमत का कठिन गणित! को समझने की करें तो संविधान के अनुच्छेद 368 के अनुसार संविधान संशोधन विधेयक पारित कराने के लिए सदन की कुल सदस्य संख्या का बहुमत और उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के कम से कम दो-तिहाई मतों का समर्थन आवश्यक है।वर्तमान लोकसभा की निर्धारित सदस्य संख्या 543 है लेकिन तीन रिक्तियों के कारण प्रभावी सदस्य संख्या 540 है।यदि सभी 540 सदस्य मतदान करते हैं तो विधेयक के समर्थन में 360 मत चाहिए। उपलब्ध राजनीतिक गणना के अनुसार एनडीए के पास लगभग 320 सांसद हैं।इनमें भाजपा के 241,नेशनल के 20, तेलुगु देशम पार्टी के 16,शिवसेना के 13, जनता दल यूनाइटेड के 12,लोक जनशक्ति पार्टी (रामविलास) के 5 तथा अन्य सहयोगियों के सांसद शामिल हैं।इस प्रकार पूर्ण उपस्थिति की स्थिति में सरकार को 40 अतिरिक्त मतों की आवश्यकता होगी।

साथियों बात अगर हम छठा पहलू,अप्रैल की हार और विपक्षी अनुपस्थिति का नया समीकरण! को समझने की करें तो 17 अप्रैल 2026 को संविधान (131वांसंशोधन) विधेयक लोकसभा में आवश्यक विशेष बहुमत प्राप्त नहीं कर सका था। उस समय 528 सदस्यों ने मतदान किया था, जिनमें 298 ने समर्थन और 230 ने विरोध किया। आवश्यक दो-तिहाई समर्थन 352 मत था, इसलिए विधेयक 54 मतों से पीछे रह गया।अब सरकार के सामने दो रास्ते हैं,अधिक विपक्षी सांसदों कासमर्थन प्राप्त करना अथवा मतदान में उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों की संख्या कम होने से आवश्यक दो-तिहाई का आंकड़ा कम होना। उदाहरण के लिए, यदि 528 सदस्य मतदान करते हैं तो 352 मत चाहिए।लेकिन केवल विपक्ष के सदन से बाहर चले जाने से सरकार को स्वत: सफलता नहीं मिलेगी। अनुच्छेद 368 के अंतर्गत कुल सदस्य संख्या के बहुमत की शर्त भी पूरी करनी होगी। इसलिए बॉकआउट की रणनीति राजनीतिक रूप से महत्वपूर्ण हो सकती है, लेकिन उसे विधेयक पारित कराने का सुनिश्चित विकल्प नहीं माना जासकता।

साथियों बात अगर हम सातवां पहलू दक्षिण भारत की चिंता और राज्यों के प्रतिनिधित्व की लड़ाई! को समझने की करें तो,तमिलनाडु की डीएमके सहित दक्षिण भारतीय दलों की आशंका है कि यदि परिसीमन केवल जनसंख्या वृद्धि के आधार पर हुआ तो जनसंख्या नियंत्रण में बेहतर प्रदर्शन करने वाले राज्यों का राष्ट्रीय संसद में तुलनात्मक राजनीतिक प्रभाव प्रभावित हो सकताहै।डीएमके मौजूदा प्रतिनिधित्व की हिस्सेदारी और राज्यों के बीच संतुलन की स्पष्ट संवैधानिक गारंटी चाहती है। सरकार की ओर से राज्यों की वर्तमान सीटों में लगभग 50 प्रतिशत समानुपातिक वृद्धि जैसे आश्वासन की चर्चा हुई है, लेकिन विपक्ष का सवाल है कि क्या यह गारंटी विधेयक के मूल पाठ में भी शामिल होगी? यह विवाद केवल उत्तर और दक्षिण का नहीं, बल्कि सहकारी संघवाद, जनसंख्या नियंत्रण को प्रोत्साहन और लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व के बीच संतुलन का है। यदि किसी राज्य ने दशकों तक जनसंख्या स्थिरीकरण के लिए बेहतर प्रदर्शन किया है तो उसके राजनीतिक प्रतिनिधित्व की सुरक्षा पर विचार करना संवैधानिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

पंजाब की सत्ता का समीकरण बदलने में जुटी भाजपा

पांच राज्यों के चुनाव में पंजाब और उत्तर प्रदेश का महत्व राष्ट्रीय राजनीति को भी दिशा देने का काम करेगा।देश की राजनीति में विधानसभा चुनाव केवल प्रदेशों की सत्ता का फैसला नहीं करते, बल्कि राष्ट्रीय राजनीति की दिशा, राजनीतिक दलों की ताकत और आने वाले वर्षों की रणनीति पर भी असर डालते हैं। पांच राज्यों के चुनावी माहौल में उत्तर प्रदेश और पंजाब का विशेष महत्व है। उत्तर प्रदेश जहां लोकसभा में सबसे अधिक सांसद भेजने वाला राज्य है, वहीं पंजाब सीमावर्ती राज्य होने के साथ कृषि, सामाजिक, धार्मिक और राष्ट्रीय सुरक्षा के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण स्थान रखता है। ऐसे में दोनों राज्यों में राजनीतिक दलों की रणनीति, गठबंधन और जनता के मुद्दे राष्ट्रीय राजनीति के लिए भी अहम बन जाते हैं।

पंजाब में भाजपा ने आगामी विधानसभा चुनाव को लेकर जिस तरह शिरोमणि अकाली दल के साथ फिर से राजनीतिक रिश्ते मजबूत किए हैं, उससे यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि पार्टी अब राज्य में अकेले अपनी ताकत बढ़ाने के साथ-साथ सहयोगियों के सहारे व्यापक राजनीतिक आधार तैयार करना चाहती है। भाजपा ने गठबंधन में छोटे सहयोगी की भूमिका स्वीकार करने का निर्णय केवल सीटों के गणित के आधार पर नहीं, बल्कि पंजाब की राजनीतिक, सामाजिक और क्षेत्रीय परिस्थितियों को ध्यान में रखकर लिया है। राजनीति में हर निर्णय के पीछे सत्ता, संगठन, जनाधार और भविष्य की संभावनाओं का आकलन होता है।

भाजपा और अकाली दल का गठबंधन पंजाब की राजनीति में नया नहीं है। दोनों दल लंबे समय तक एक साथ चुनाव लड़ते रहे हैं। भाजपा का शहरी क्षेत्रों और हिंदू मतदाताओं के बीच प्रभाव रहा है, जबकि अकाली दल का पारंपरिक आधार ग्रामीण पंजाब और सिख समाज के एक हिस्से में रहा है। दोनों की रणनीतिक ताकत अलग-अलग क्षेत्रों में होने के कारण गठबंधन को एक-दूसरे के जनाधार का लाभ मिलता रहा। हालांकि कृषि कानूनों को लेकर वर्ष 2020 में दोनों के रास्ते अलग हो गए थे। अब फिर साथ आने का फैसला बताता है कि बदलते राजनीतिक हालात में पुराने सहयोग की संभावनाओं को नए सिरे से परखा जा रहा है।

भाजपा के सामने पंजाब में सबसे बड़ी चुनौती अपने संगठन को मजबूत करने और प्रदेश की जनता के बीच भरोसेमंद राजनीतिक विकल्प के रूप में स्थापित करने की है। केवल राष्ट्रीय नेतृत्व, बड़े कार्यक्रम और प्रचार अभियान के सहारे प्रदेश की सत्ता तक पहुंचना आसान नहीं है। पंजाब की राजनीति में स्थानीय नेतृत्व, किसानों की भावनाएं, धार्मिक-सामाजिक संस्थाओं के प्रति सम्मान और ग्रामीण क्षेत्रों के मुद्दे निर्णायक भूमिका निभाते हैं। यही कारण है कि भाजपा गठबंधन, स्थानीय नेताओं, सामाजिक संपर्क और जनहित के मुद्दों को एक साथ लेकर आगे बढ़ने की कोशिश कर रही है।

पार्टी की रणनीति में सामाजिक समीकरणों का भी विशेष स्थान है। पंजाब में दलित समाज की बड़ी आबादी है। पिछड़े वर्गों, छोटे व्यापारियों, ग्रामीण परिवारों, युवाओं और शहरी मतदाताओं तक पहुंच बढ़ाने की कोशिश किसी भी राजनीतिक दल के लिए महत्वपूर्ण है। भाजपा इन वर्गों के बीच अपनी राजनीतिक उपस्थिति मजबूत करने के लिए विभिन्न कार्यक्रमों, सामाजिक संपर्क अभियानों और नेताओं की भागीदारी पर जोर दे रही है। प्रदेश अध्यक्ष के रूप में स्थानीय राजनीतिक पृष्ठभूमि वाले चेहरे को जिम्मेदारी देना भी इसी दिशा में एक कदम माना जा सकता है। राजनीति में चेहरे, संगठन और जनता के बीच संवाद का अपना महत्व होता है।

पंजाब में कांग्रेस और आम आदमी पार्टी के राजनीतिक आधार में सेंध लगाने की कोशिश भी भाजपा की रणनीति का हिस्सा है। विभिन्न दलों के नेताओं का भाजपा में शामिल होना पार्टी के लिए संगठनात्मक मजबूती का अवसर हो सकता है, लेकिन केवल नेताओं के आने से मतदाता स्वतः साथ नहीं आते। जनता नेताओं के पिछले काम, उनके राजनीतिक व्यवहार और पार्टी की नीतियों को भी देखती है। इसलिए भाजपा के लिए नए नेताओं को संगठन में जगह देने के साथ पुराने कार्यकर्ताओं का सम्मान, स्थानीय नेतृत्व में समन्वय और जनता के बीच लगातार संपर्क बनाए रखना जरूरी होगा।

नशे की समस्या, कानून-व्यवस्था, गैंगस्टरवाद, बेरोजगारी और युवाओं का भविष्य पंजाब के प्रमुख मुद्दों में शामिल हैं। पंजाब लंबे समय से नशे की समस्या से जूझ रहा है। इस विषय पर राजनीतिक दलों के वादे जनता के सामने हैं, लेकिन मतदाता केवल घोषणाओं से संतुष्ट नहीं होंगे। नशे के कारोबार पर नियंत्रण, युवाओं के लिए रोजगार, शिक्षा और खेल के अवसर तथा अपराध के खिलाफ प्रभावी कार्रवाई जैसे विषयों पर ठोस योजनाओं की जरूरत है। भाजपा इन मुद्दों को चुनावी विमर्श का हिस्सा बनाकर अपनी राजनीतिक जमीन मजबूत करना चाहती है।

हालांकि भाजपा और अकाली दल के सामने चुनौतियां भी कम नहीं हैं। किसानों के मुद्दे दोनों दलों के रिश्तों और जनता के बीच उनकी स्वीकार्यता की परीक्षा ले सकते हैं। कृषि कानूनों को लेकर बीते वर्षों में पैदा हुई नाराजगी राजनीतिक स्मृति का हिस्सा बनी हुई है। किसानों के भरोसे को बहाल करना आसान काम नहीं होगा। इसके लिए संवाद, नीतिगत स्पष्टता और किसानों की समस्याओं के समाधान को लेकर ठोस कदम जरूरी होंगे।

अकाली दल के सामने भी अपनी राजनीतिक प्रतिष्ठा को फिर से मजबूत करने की चुनौती है। पार्टी को ग्रामीण मतदाताओं के बीच पुराने विश्वास को बहाल करना होगा। धार्मिक और सामाजिक मुद्दों पर जनता की भावनाएं पंजाब की राजनीति में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इसलिए गठबंधन की सफलता केवल भाजपा की रणनीति पर निर्भर नहीं करेगी, बल्कि अकाली दल की संगठनात्मक मजबूती, नेतृत्व की स्वीकार्यता और दोनों दलों के बीच तालमेल पर भी निर्भर करेगी। सीटों का बंटवारा गठबंधन की एक और परीक्षा होगा। चुनाव में कौन कितनी सीटों पर उम्मीदवार उतारेगा, किन क्षेत्रों में किस पार्टी का प्रभाव अधिक है और स्थानीय कार्यकर्ताओं की भूमिका क्या होगी, ये सभी प्रश्न गठबंधन की मजबूती को प्रभावित कर सकते हैं।

भारतीय खाद्य संस्कृति पर आघातों से सुप्रीम कोर्ट चिन्तित

भारत की पहचान केवल उसकी आध्यात्मिकता, विविधता और संस्कृति से नहीं, उसकी रसोई से भी होती है। हमारी रसोई में स्वाद के साथ स्वास्थ्य, ऋतु के साथ संतुलन और भोजन के साथ संस्कार जुड़े रहे हैं। दादी-नानी के हाथों का भोजन केवल पेट भरने का साधन नहीं था, वह परिवार की सेहत की पहली पाठशाला था। दाल, बाजरा, ज्वार, रागी, हरी सब्जियां, मौसमी फल, छाछ, अंकुरित अनाज, मसालों का संतुलित उपयोग और घर का ताजा भोजन भारतीय जीवन-पद्धति की ताकत रहे हैं। लेकिन पिछले कुछ दशकों में हमारी थाली धीरे-धीरे बदल गई है। स्वाद के नाम पर बाजार ने हमारी रसोई में प्रवेश किया और सुविधा के नाम पर पैकेट ने घर की कड़ाही को पीछे धकेलना शुरू कर दिया। इसी बदलती खाद्य संस्कृति के बीच सुप्रीम कोर्ट का हालिया निर्देश एक महत्वपूर्ण चेतावनी की तरह सामने आया है। सुप्रीम कोर्ट ने खाद्य पैकेटों पर फ्रंट-ऑफ-पैक पोषण लेबलिंग को मजबूत करने का निर्देश देते हुए कहा है कि अधिक शुगर, सैचुरेटेड फैट और नमक वाले उत्पादों पर अलग-अलग स्पष्ट चेतावनी चिह्न हों। न्यायालय ने 'टोटल शुगर' और 'सैचुरेटेड फैट' को प्रमुखता से दिखाने तथा 'हाई शुगर', 'हाई फैट और 'हाई साल्ट' जैसे स्पष्ट संकेत देने की दिशा में कदम उठाने को कहा है। उद्देश्य बिल्कुल स्पष्ट है-उपभोक्ता को वह जानकारी सामने मिले, जिसे वह छोटे अक्षरों में खोजते-खोजते अक्सर छोड़ देता है।

यह फैसला केवल लेबल बदलने का फैसला नहीं है, यह उस सोच को बदलने का प्रयास है जिसमें चमकदार पैकेट देखकर भोजन की गुणवत्ता तय कर ली जाती है। आज बाजार में किसी उत्पाद का विज्ञापन उसकी पौष्टिकता से अधिक आकर्षक पैकेजिंग, स्वाद और सुविधा बेचता है। बच्चे रंगीन पैकेट से आकर्षित होते हैं, युवा त्वरित भोजन को जीवनशैली समझने लगे हैं और व्यस्त परिवारों के लिए डिब्बाबंद भोजन समय बचाने का आसान विकल्प बन गया है। समस्या तब पैदा होती है जब सुविधा धीरे-धीरे आदत और आदत बीमारी में बदल जाती है। सबसे बड़ा खतरा यह है कि भोजन का अर्थ बदल रहा है। भोजन कभी जीवन को पोषण देने की प्रक्रिया था, अब वह तेजी से उपभोग की वस्तु बन रहा है। अधिक नमक, अधिक चीनी और अधिक वसा हमारे स्वाद की इंद्रियों को तो संतुष्ट कर सकते हैं, लेकिन शरीर की जरूरतों को नहीं। स्वाद की जीभ छोटी अवधि की खुशी चाहती है, जबकि शरीर दीर्घकालिक संतुलन मांगता है। बाजार ने हमारी जीभ को जीतने की कोशिश की है, अब हमें अपने विवेक को जीतना होगा।

भारत जैसे देश में यह चुनौती और गंभीर है, क्योंकि यहां भोजन केवल व्यक्तिगत पसंद नहीं, संस्कृति का हिस्सा है। हमारी परंपरा में 'जैसा अन्न वैसा मन' की धारणा रही है। भोजन को आयु, ऋतु, प्रकृति और श्रम के अनुरूप लेने की परंपरा थी। भारतीय रसोई में अनेक ऐसे खाद्य पदार्थ मौजूद हैं जिन्हें आज दुनिया 'सुपरफूड' कहकर खोज रही है। बाजरा, जौ, दालें, तिल, मूंगफली, विभिन्न प्रकार के अनाज, सब्जियां और स्थानीय खाद्य परंपराएं हमारी अपनी विरासत हैं। विडंबना यह है कि जिन खाद्य पदार्थों की ओर दुनिया स्वास्थ्य के लिए लौट रही है, हम उन्हीं को छोड़कर अत्यधिक प्रसंस्कृत और पैकेटबंद खाद्य पदार्थों की ओर आकर्षित हो रहे हैं। इसलिए सुप्रीम कोर्ट की पहल को केवल उपभोक्ता अधिकार या विषय मानना पर्याप्त नहीं होगा। इसे भारतीय खाद्य संस्कृति के पुनर्जागरण के अवसर के रूप में देखना चाहिए।

सरकार की जिम्मेदारी भी यहां बहुत बड़ी है। खाद्य सुरक्षा का अर्थ केवल यह सुनिश्चित करना नहीं होना चाहिए कि उत्पाद खाने योग्य है, यह भी देखना होगा कि उपभोक्ता को उस उत्पाद के वास्तविक स्वास्थ्य प्रभाव की जानकारी आसानी से मिले। एफएसएसएआई को वैज्ञानिक, स्पष्ट और उपभोक्ता-केंद्रित नियम बनाने होंगे। केवल नियम बनाना पर्याप्त नहीं, उनका प्रभावी निरीक्षण और कठोर पालन भी जरूरी है। सुप्रीम कोर्ट का निर्देश इसी दिशा में नियामकीय व्यवस्था को मजबूत करने का अवसर देता है। लेकिन सारी जिम्मेदारी सरकार या अदालत की नहीं हो सकती। उपभोक्ता को भी अपनी थाली का प्रहरी बनना होगा। जिस प्रकार हम घर खरीदते समय कीमत, स्थान और गुणवत्ता देखते हैं, उसी प्रकार भोजन खरीदते समय उसके घटकों को देखना भी हमारी आदत बननी चाहिए। किसी पैकेट पर बड़ा 'हेल्दी' लिखा होना उसे स्वतः स्वस्थ नहीं बना देता। विज्ञापन स्वास्थ्य का प्रमाणपत्र नहीं है। असली प्रमाण उसके पोषण संबंधी विवरण और हमारी आवश्यकता के बीच संतुलन है।

बच्चों के मामले में विशेष सावधानी आवश्यक है। बच्चे विज्ञापन और पैकेजिंग से सबसे जल्दी प्रभावित होते हैं। यदि स्कूल के आसपास और डिजिटल माध्यमों पर अल्पधिक चीनी, नमक और वसा वाले खाद्य पदार्थों को आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया जाता रहेगा, तो स्वस्थ भोजन उनके लिए 'उबाऊ' और अस्वास्थ्यकर भोजन 'मजेदार' बन जाएगा। इसलिए स्कूलों को केवल पाठ्यपुस्तकों में स्वास्थ्य शिक्षा देने के बजाय कैंटीन और परिसर के आसपास उपलब्ध भोजन के माध्यम से भी स्वस्थ आदतें विकसित करनी होंगी। सुप्रीम कोर्ट ने स्कूलों के आसपास ऐसे खाद्य पदार्थों और उनके विज्ञापनों पर नियंत्रण की दिशा में भी जोर दिया है। हमें यहां एक और क्रांतिकारी विचार पर काम करना होगा- 'फूड लिटरेसी' को जनशिक्षा का हिस्सा बनाना। जिस तरह बच्चों को वित्तीय साक्षरता और डिजिटल साक्षरता सिखाई जा रही है, उसी तरह उन्हें खाद्य साक्षरता भी सिखाई जानी चाहिए। बच्चे जानें कि शुगर क्या करती है, अधिक नमक क्यों नुकसान पहुंचाता है, संतुलन क्या है, पैकेट पर लिखे पोषण-लेबल को कैसे पढ़ना है और ताजा स्थानीय भोजन क्यों बेहतर विकल्प हो सकता है। एक जागरूक बच्चा केवल स्वयं स्वस्थ नहीं रहेगा, वह अपने परिवार की भोजन-आदत भी बदल सकता है। साथ ही भारतीय खाद्य संस्कृति को आधुनिक रूप देकर पुनर्जीवित करने की जरूरत है। स्वस्थ भोजन का अर्थ यह नहीं क